Quest Journals
Journal of Research in Humanities and Social Science
Volume 11 ~ Issue 9 (2023) pp: 331-333
ISSN(Online):2321-9467
www.questjournals.org

Research Paper

औपनिवेशिक काल में भारतीय पूंजीपतियों के उद्भव एवं विकास की पृष्ठभूमि

बमबम कुमार
शोध छात्र, इतिहास विभाग, बी.एन.एम.यू. मधेपुरा, बिहार

सार

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में 1905 में संघर्ष के लिए नये दौर की शुरूआत हुई और आन्दोलन के लिए जिस नये अस्त्र, बहिष्कार के अस्त्र को अपनाया गया। वे सब विश्व में घटित हो रही क्रांतिकारी प्रक्रिया और भारत का हो रहा औपनिवेशिक शोषण के सम्मिलित प्रभाव से उत्पन्न हुई थी। भारत में जिन कारकों ने राष्ट्रीय आन्दोलन को 1905 के आते–आते एक उच्चतर मंजिल में ला खड़ा किया उनमें ब्रिटिश शासन का औद्योगिक पूंजी से वित्तीय पूंजी का शासन पूंजी के शासन में परिवर्तित होना एक प्रमुख कारक रहा था। यों तो वित्तीय पूंजी का शासन पूंजी के निर्यात के लिए जाना जाता है मगर भारत की विडम्बना रही थी कि जितनी पूंजी का निर्यात इंग्लैंड ने भारत में किया था उसमें ज्यादा पूंजी भारत से इंग्लैंड की तरफ बह कर गई थी। औद्योगिक पूंजी के शासन काल में भारत की लूट के जिन सीधे तरीकों ब्रिटिश शासक अपनाये हुए थे वह अब भी समाप्त नहीं हुई थी, हालांकि उसका रूप बदल कर और ज्यादा अस्पष्ट और दुरूह तथा उपर से सामान्य ढ़ंग से न दिखने वाला बना दिया गया था।

विस्तार

19वीं सदी तक शोषण करके इंग्लैंड भेजी जाने वाली भारी राशि को औपनिवेशिक शासक नजराना कहते थे, उसे समाप्त तो करने का प्रश्न ही नहीं था अब उसे लाखों पौंड की राशि को गृहशुल्क तथा व्यक्तिगत तौर पर इंग्लैंड भेजा जाता रहा। तेज रफतार आवागमन के साधनों को भारत में ला देने के बाद व्यापार में आई तेजी ने भारत से इग्लैंड की तरफ लूट के धन के बहाव को भी तेज कर दिया और इस बहाव के कारण भारत से बाहर जाने वाले धन के बदले में भारत को कुछ नहीं मिलता था–सिवा उस अतिशय कम राशि के जो सरकारी भंडारों के लिए इंग्लैंड से आती थी। 20वीं सदी में व्यापार में तो गिरावट का रूख देखा गया मगर इंग्लैंड की तरफ बहाकर जानेवाली राशि में तेज गति से विकास का रूख प्रकट हो रहा था। 19वीं सदी के मध्य तक नजराने के रूप में भारत से इंग्लैंड जानेवाली राशि और 20वीं सदी के शुरूआती दशकों में गृहशुल्क के रूप में जाने वाली राशि के अंतर से पता चलता है कि भारत से इंग्लैंड की तरफ धन के बहाव की गति तेज थी। 1848 में कम्पनी के एक डायरेक्टर कर्नल साइक्स ने एक अनुमान में नजराने के रूप में भेजी जाने वाली राशि को अनुमानतः 35 लाख पौंड बताया था और कहा था कि भारत नजराने की इस राशि के बोझ को तभी बर्दाश्त कर सकता था जब आयात की तुलना में निर्यात अधिक हो।[1]एक व्यापारी एन. एलेक्जेंडर ने बताया था कि 1847 तक भारत करीब 60 लाख पौंड का आयात तथा 90 लाख पौंड का निर्यात करना था। आयात और निर्यात का यही अंतर नजराना था जिसे कम्पनी प्राप्त करती थी[2] लेकिन 1901 के आते–आते 1851 के नजराने की राशि की तुलना में 'गृहशुल्क' के नाम पर इंग्लैंड भेजी जानी वाली राशि में सात गुणा की बढ़ोतरी हो गई – 25 लाख पौंड से बढ़कर यह राशि 1 करोड़ 73 लाख पौंड हो गई, और इसके अलावा भी वह राशि अलग थी जिसे ब्रिटिश आफिसरों ने व्यक्तिगत रूप से भारत से इंग्लैंड भेजा था। 1913–14 तक इस राशि में आई बढ़ोतरी 1 करोड़ 94 लाख पौंड तक जा पहुंची। 1851 से 1901 के बीच भारत से होने वाले निर्यात में तीन गुणा की वृद्धि दर्ज की गई थी–33 लाख पौंड से बढ़कर 1 करोड़ 10 लाख पौंड हो गई थी। लेकिन 20वीं सदी में निर्यात में बड़ी तेजी से वृद्धि हुई–1901 से 1913–14 के बीच यह बढ़कर 1 करोड़ 42 लाख पौंड हो गई।[3]

दरअसल यह दिखाता है कि शोषण में आई इस जबरदस्त वृद्धि का राज यह था कि स्वतंत्र व्यापार वाले औद्योगिक पूंजीवाद ने शोषण के जिस नए रूप को जन्म दिया था वह था महाजनी। वित्तीय पूंजीवाद के काल में विकास

कर रहा था। औद्योगिक पूंजीवाद की जरूरतों ने व्यापारिक पूंजी के शासन का प्रतिनिधित्व करने वाली कम्पनी के शासन को समाप्त कर दिया था और भारत को इंग्लैंड के सम्पूर्ण पूंजीपति वर्ग की घुसपैठ के लिए रास्ता साफ कर दिया जाय। अब भारत को व्यापारिक घुसपैठ के लिए पूरी तरह खोल दिया जाता, और इसके लिए द्रुत संचार साधनों रेल, डाक, तार आदि के साथ सड़कों का जाल बिछाना जरूरी हो गया था। इस तरह सदियों से उपेक्षित भारत में संचार साधनों को लाने के लिए बाध्य किया था ताकि लूट की गारंटी और उसका बढ़ाने का काम हो सके। भारत में ब्रिटिश पूंजी निवेश का प्रमुख तरीका सार्वजनिक ऋण था। ब्रिटिश सरकार की देखरेख में सार्वजनिक ऋण 18 वर्षो में बढ़कर 7 करोड़ पौंड से 14 करोड़ पौंड हो गया, 1960 ई॰ तक यह बढ़कर 22 करोड़, 40 लाख पौंड और 1913 तक 27 करोड़ 40 लाख पौंड हो गया था। 1909–10 में सर जॉर्ज पैस ने अपने एक अनुमान में कहा था कि भारत और श्रीलंका में कुल 36 करोड़ 50 लाख पौंड की ब्रिटिश पूंजी लगी हुई है।[4] फिर भी इसका यह अर्थ नहीं था कि इस पूंजी से भारत का औद्योगिकरण हो रहा था। 1914 के पूर्व भारत में लगी तमाम ब्रिटिश पूंजी का 97 प्रतिशत भाग यातायात, रेल समेत, चाय और काफी बागानों में ही लगी थी। जॉर्ज पैश ने 1909–10 में ही अनुमान लगाया था कि पहले से ही भारत में मौजूद औद्योगिक पूंजीवाद और व्यापार के जरिए भारत की परिस्थितियों से उत्पन्न महाजनी। वित्तीय पूंजी द्वारा भारत के शोषण का नया आधार शुरू से ही व्यापार की प्रक्रिया का सहायक था। और यही कारण था कि 1905 में राष्ट्रीय आन्दोलन ने जिस नई रणनीति का इजाद किया वह भारत में आने वाले ब्रिटिश मालों के बहिष्कार की रणनीति थी, जो ब्रिटिश व्यापार पर हमला करती थी।

1905 में राष्ट्रीय आन्दोलन में जो गति आई उसका एक अन्य कारण जो अंतर्राष्ट्रीय महत्व का था और जिसका चरित्र आर्थिक और राजनीतिक दोनों पक्षों से संबंध था, सामने आता है। आर्थिक कारणों की शुरूआत को 1875 के बाद के वर्षो से देखा जा सकता था जब ब्रिटेन के एकाधिकार के क्रमिक क्षरण के कारण विश्व बाजार पर ब्रिटेन की पकड़ काफी ढ़ीली पड़नी शुरू हो गई थी। हालांकि भारत में यह प्रक्रिया काफी धीमी दिखी, क्योंकि भारत पर अंग्रेजी की राजनीतिक पकड़ काफी मजबूत थी। फिर, भी, 1914 के युद्ध तक भारत का एक तिहाई बाजार पर विश्व के अन्य देशों का कब्जा हो, गया था। भारत में जो कुल माल विदेशों से आया था उसमें ब्रिटेन का हिस्सा 1884 से 89 तक 82 प्रतिशत से घटकर 79 प्रतिशत और 1899–1904 तक 66 प्रतिशत रह गया था और 1909 से 14 तक यह घटकर 63 प्रतिशत हो गया। लेकिन भारत में लगाई गई पूंजी पर मुनाफा और घरेलू खर्च में काफी वृद्धि हुई। 1913–14 के बीच भारत और इंग्लैंड के बीच 11 करोड़ 70 लाख का व्यापार हुआ और उस पर 10 प्रतिशत व्यापारिक लाभ की दर से 1 करोड़ 20 लाख पौंड का मुनाफा हुआ। 1911 तक भारत में कुल ब्रिटिश पूंजी 45 करोड़ पौंड की थी जो, 1914 में बढ़कर 50 करोड़ पौंड हो गई। इस पूंजी पर अगर 5 प्रतिशत के औसत लाभ को जोड़ा जाय तब भी भारत से ब्रिटेन को करोड़ो का लाभ मिलता है। युद्ध के काल में भारत के बाजारों पर इंग्लैंड की पकड़ और कमजोर हुई और एक तिहाई से थोड़ा ज्यादा रह गई थी। उसके स्थान पर अन्य देशों ने अपना कब्जा जमाया। इसके साथ ही भरतीय पूंजी ने भी हल्के उद्योगों के क्षेत्र में प्रगति की लेकिन कई तरह की कठिनाइयों को झेलते हुए सरकार ने भी इसे निरूत्साहित किया। इस कारण युद्ध के बाद के वर्षो में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रकृति में भी बुनियादी बदलाव के दर्शन हुए।

भारत समेत विश्व के पैमाने पर जो आर्थिक घटनाएं घट रही थी वे विकास की ऐतिहासिक भौतिकवादी नियमों के अनुसार आर्थिक–सामाजिक बदलाव के लिए तकनीकी आधारों का सृजन कर रही थी। इसी काल में यूरोप के सबसे बड़े पूंजीवादी राज्यों में उनके विकास क्रम में एकाधिकार पूंजीवाद के उदय के कारण स्वतंत्र प्रतिस्पर्द्धा का काल समाप्त हो गया था और पूंजी निर्यात की प्रक्रिया ने विश्व बाजार का बंटवारा कर दिया था। इससे पूंजीवादी मुल्कों के बीच एक नई प्रतिस्पर्द्धा का जन्म हो रहा था विश्व बाजार के पुनः बंटवारे के लिए संघर्षरत दिखी और इसके हल के लिए एक वैश्विक युद्ध के खतरे का सामने ला खड़ा कर दी थी। ऐसी स्थिति में राष्ट्रीय समस्याओं को केन्द्र अब यूरोप से हटकर पूरब की तरफ आ गया था, जो किसी क्रांति के सम्पूर्ण आयाम से संबंध तो नहीं था मगर यह पूरब के देशों में उनके अपने राष्ट्रीय राज्य निर्माण की समस्या से आबद्ध था। यह राजनीतिक मुद्दा खास कर 1905 की रूसी क्रांति के बाद के दिनों में औपनिवेशिक जनता की मतों एक अहम मुद्दा बन गया था। खास करके राष्ट्रों के आत्म निर्णय नहीं हो सका था वे आगे आई और संघर्ष में उतरी। इस जनता को क्रांतिकारी सर्वहारा के साथ एक कायम करने का नारा दिया जाने लगा था। 1905 की रूसी क्रांति का स्पष्ट प्रभाव था कि इसने एशिया की औपनिवेशिक जनता को क्रांतिकारी आन्दोलनों की तरफ मुखातिब कर दिया था और खास कर 1902 में राष्ट्रों के आत्मनिर्णय के अधिकार के नारों के आने के बाद भारत समेत एशिया की सम्पूर्ण राजनीति में क्रांतिकारी पहल को खास बल मिल रहा था। पहले साम्राज्यवाद को पूंजीवाद की मात्रा एक नीति के रूप में ही समझा और देखा जा रहा था मगर इस काल में, साम्राज्यवाद को पूंजीवाद की एक अवस्था और वह भी आखिरी अवस्था, के रूप में पारिभाषित किए जाने के कारण साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष का जो पहलू पहले था– औपनिवेशिक लूट वाला, हमला करने वाला आदि और उसके खिलाफ संघर्ष को इसी लूट, हमला आदि से राष्ट्रों को बचाने का था। मगर जब इसे पूंजीवाद के एक स्टेज के रूप में स्थापित किया गया तब इसके खिलाफ का संघर्ष पूंजीवाद के खिलाफ के संघर्ष का रूप ग्रहण कर लिया। लेनिन ने इस युग की तीन प्रमुख सामाजिक राजनतिक शक्तियों का जिक्र कियाः पूंजीवादी मूल्य जो विभिन्न खेमो में विभाजित होकर युद्ध की तैयारी में लगे हुए थे, दूसरा इन पूंजीवादी मूल्कों का मजदूर वर्ग, जो अपनी राजनीतिक पार्टी, मजदूर संगठनों में संगठित था और जिसके पास संघर्षो का अपना अनुभव था, तथा तीसरा औपनिवेशिक जनता जो लगातार अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष की तरफ बढ़ रही थी। लेनिन ने औपनिवेशिक जनता के राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षो और पूंजीवादी मुल्कों के सर्वहराओं की एकता पर बल दिया। साम्राज्यवाद विरोधी मोर्चा की जिसे भारत ने भी अपने राष्ट्रीय आन्दोलन में संगठित किया था, यह पहली राजनीतिक

समझ थी। यूरोप के सर्वहाराओं और एशिया के जनवादियों की एकता को बुर्जआ सत्ता को समाप्त करने की बातों की स्वीकार किया गया।[5] राष्ट्रों के आत्म निर्णय के सिद्धांत से संबंध एक महती प्रश्न था कि औपनिवेशिक देशों के पूंजीपतियों के प्रति सर्वहारा का दृष्टिकोण क्या हो? इस प्रश्न का संबंध भारत के संबंध में ज्यादा निर्णायक था, क्योंकि राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व भारत का राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग ही कर रहा था। विश्व क्रांतिकारी प्रक्रिया के अनुरूप जब औपनिवेशिक देशों का राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग का साम्राज्यवाद के साथ संघर्ष कर रहा हो तो सर्वहारा को उसका समर्थन करना चाहिए और जब वह साम्राज्यवाद के साथ जब वह स्वयं के पूंजीवादी राष्ट्रीयता के लिए साम्राज्यवाद के साथ मोल–तोल करता हो तब उसके खिलाफ विरोध करना चाहिए। यह वह कार्य नीति है जो राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग के चरित्र को दोहरा बनाती है और सर्वहारा को भी उसके प्रति अपनी नीति को दोहरी रखनी चाहिए। राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन के संदर्भ में भारत में इस नीति के लागू किए जाने की नीति का सर्वहारा की पार्टी द्वारा आगे के कालों में विकसित होते देखा गया।

विश्व क्रांतिकारी प्रक्रिया के तेज होते प्रभाव का असर भारत की राजनीति और स्वतंत्रता आन्दोलन पर स्पष्ट देखा गया। 20वीं सदी के प्रथम दशक के भारत में भी राष्ट्रीय संघर्ष के नये दौर की शुरूआत के लिए जो शक्तियाँ गोलबंद हुई वे निश्चित तौर पर एशियाई जापान द्वारा जारशाही रूस की पराजय–जिसने यूरोपीय देशों की किसी भी एशियाई देश द्वारा अपराजयता के मिथक को समाप्त कर दिया और एक नये उत्साह का माहौल पैदा किया–1905 की रूसी क्रांति और उसमें प्रतिपादित राष्ट्रों के आत्मनिर्णय के सिद्धांत के प्रति प्रतिबद्धता आदि विश्वव्यापी क्रांतिकारी लहर का ही प्रतिबिम्बन थी। शासक देशों के मजदूर वर्ग और उनके आंदोलनों की औपनिवेशिक जनता के राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों के साथ एकता के सिद्धांत को विश्व क्रांतिकारी प्रक्रिया ने जिस तरह एक महत्वपूर्ण आन्दोलनात्मक रणनीति के रूप में स्थापित किया, उससे एशिया अफ्रीका की औपनिवेशिक शासन के भीतर कुचली जा रही जनता का एक गठबंधन शासक मुल्कों के मजदूर वर्गो और दलित जनता के साथ होने की न सिर्फ सम्भावना बढ़ी बल्कि राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन में उसका प्रत्यक्ष और परोक्ष, भौतिक और नैतिक समर्थन का दरवाजा भी खुल गया। भारत में इन शक्तियों का ध्रुवीकरण और एकता 1905 में बंगाल विभाजन के खिलाफ आन्दोलन में परवान चढ़ा। क्रांतिकारियों और राष्ट्रवादियों के इन मुख्य तत्वों ने विकास की इस विश्वव्यापी क्रांतिकारी प्रक्रिया के प्रभावों के तहत अपनी रणनीति का नये सिरे से समायोजन करना शुरू किया।

–: संदर्भ :–

1. हाउस ऑफ कामन्स की प्रवर समिति के समक्ष प्रस्तुत ब्यान 1948 ।
2. उपरोक्त।
3. रिपोर्ट ऑफ इन्डियन दि फिस्कल कमीशन, 1922 पृ. 20 ।
4. सर चार्ज पैरा का लेख : जनरल ऑफ दि रायल स्टाटिस्टिकल सोसाइटी,
   खण्ड, 74 भाग 1, 2 जनवरी, 1911 ।
5. वी. आई. लेनिन कलेक्टेड वर्क्स भो॰ 19, पृ॰ 83–84 ।